जलविज्ञान एवं जल संसाधन
पर राष्ट्रीय संगोष्ठी
15-16 दिसम्बर, 1995, रूड़की

संतुलित जल सिंचित धान : उत्पादन संवृद्धि

एच0 के0 पाण्डेय[1] ए0 आर0 शर्मा[2]

सारांश

धान की फसल के लिये दूसरी अन्य धान्य फसलों की तुलना में अधिक जल की आवश्यकता होती है । प्राकृतिक रूप से मध्यम जलीय होने के बावजूद धान अदक्षतापूर्वक जल का उपयोग करता है और जल की अधिकता एवं कमी से बुरी तरह प्रभावित होता है । बारानी दशाओं में वर्षा कभी कभी समय पर अथवा पर्याप्त नहीं होती जिससे कि धान की फसल की जल की आवश्यकता पूरी हो सके, अतएव जल प्रबन्धन पद्धति की आवश्यकता अपरिहार्य हो जाती है। बारानी दशाओं की तुलना में सिंचित दशा में फसलोत्पादन सामान्यतया अधिक होता है । उत्पादन के स्तर और जल उपयोग दक्षता में पुनर्वृद्धि के लिए फसल की आवश्यकता मृदा प्रकार, कृषिगत दशाओं में उसकी भौतिक और रसायनिक स्थिति और भूमि का सतही क्रम (टोपो सिक्वेन्स) की विशेषता के आधार पर, उपयुक्त जल प्रबंधन तकनीकी विकसित की गयी है । देश में विभिन्न दशाओं में धान की खेती के उपयुक्त पहलुओं के मद्देनजर इस प्रपत्र में जल प्रबंधन के सन्दर्भ में उपलब्ध सूचनाओं को संकलित किया गया है । यह ज्ञातव्य है कि भूमि का प्रकार जिस पर धान की खेती की जाती है तथा जल प्राप्ति के स्रोत के आधार पर विभिन्न दशाओं में व्यापक अन्तर होता है । जबकि धान के क्षेत्र मे जल का ह्रास मृदा कारको के अतिरिक्त वातावरण और जल प्रबन्ध पद्धतियों से भी प्रभावित होता है, निश्चय रूप से दूसरा अति व महत्वपूर्ण है ।

जल ह्रास को न्यूनतम करने के लिए अनुसंधान निष्कर्षों के आधार पर उपयुक्त तकनीक की रूपरेखा प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है । धान की खेती की उपयुक्त पद्धतियों जैसे मौसम की अवधि के अनुरूप और वातावरण के उपयुक्त धान के प्रजाति की खेती, रिसाव क्षति के नियन्त्रण, पडलिंग या सघनीकरण को समाहित करते हुए मृदा प्रबन्धन, मानसून के मौसम में उपयुक्त मृदा वातावरण के विकास और गर्मी के मौसम में जल के आर्थिक उपयोग में वृद्धि हेतु फसल की वृद्धि–अवस्थाओं से संबंधित चरणीय जल भराव के साथ सिंचाई क्रम का जल प्रबन्धन के प्रभाव को ध्यान में रखते हुए प्रयास किया गया है । यह भी दृढ़ता के साथ कहा जा सकता है कि फसल–मृदा–वातावरण की विशेष आवश्यकता की पहचान के लिए क्रमबद्ध खोज की जानी चाहिए ।

प्रस्तावना

धान के खेत में जल प्रबन्ध एक संवर्धित पद्धति है जिसके तहत कई प्रक्रियाओं को एकीकृत किया गया है जैसे धान के खेत तक पानी को पहुंचाना, उसका वितरण, धान के प्रक्षेत्र में सही समय पर उचित मात्रा में पानी का प्रयोग, फसल द्वारा पानी का उपयोग, आवश्यकता से अधिक पानी का जल निकास इत्यादि जिससे कि अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करने के साथ ही साथ जल के आर्थिक उपयोग और जल–उपयोग दक्षता को बढ़ाया जा सके ।

1 वैज्ञानिक शस्य विज्ञान, केन्द्रीय धान अनुसंधान संस्थान, कटक ।
2 वैज्ञानिक शस्य विज्ञान, केन्द्रीय धान अनुसंधान संस्थान, कटक ।

धान का पौधा आसानी से विविध प्रकार की जलवायु को अंगीकृत कर लेता है जिसके चलते इसका प्रसार उष्ण एवं शीतोष्ण क्षेत्रों तक है । जलवायिक कारकों में वर्षा एक महत्वपूर्ण कारक है जो धान उत्पादन को प्रभावित करती है । बहुधा मानसून की शुरूआत से ही धान की रोपाई का समय निर्धारित होता है । वर्षा का मौसमीय वितरण जल उपलब्धता और उसकी माग को काफी हद तक प्रभावित करता है । ऐसी दशा में जबकि तापक्रम और पानी सीमित न हो सार्यिक विकिरण फसल के प्रदर्शन को प्रभावित करता है । प्रकाश संवेदिता के आधार पर धान छोटे दिन का पौधा है किन्तु ऐसी प्रजातियां भी हैं जो कि प्रकाशावधि के प्रति संवेदी नहीं हैं । यह सामान्य तौर पर प्रेक्षित किया गया है कि देर से पकने वाली अथवा अधिक दिनों की प्रजातियां (135 दिन) प्रकाशावधि संवेदी होती हैं एक विशेष मौसम में ही उगाई जा सकती हैं, जबकि दूसरी अन्य प्रजातियों के लिए इस प्रकार की मौसमिक बाधाएं नहीं हैं ।

मृदा दशा और जल प्रबन्धन

धान के लिए उपयुक्त मृदा : धान की खेती ऐसी मृदाओं में संस्तुत की जाती हैं जिसमें जल का ह्रास रिसाव एवं सोखने के द्वारा न्यूनतम हो । रिसाव के मानों के आधार पर धान उगाने के लिए सिचित दशा में निम्न प्रकार से मदा की उपयुक्तता सीमा को विभाजित किया गया है :

तालिका – 1 : रिसाव के आधार पर धान उगाने के लिए मृदा की उपयुक्तता

मृदा वर्ग	बहुत अच्छा	अच्छा	सीमान्त	अनुपयोगी
रिसाव (मि0मि0 प्रतिदिन)	1.25	2.5 - 5.0	5.0 - 10.0	10 से ऊपर

धान के क्षेत्र में मृदा कारकों के अतिरिक्त जल का ह्रास विभिन्न प्रकार के मृदा और जल प्रबन्धन पद्धतियों से भी नियंत्रित होता है । एक उपयुक्त कृषीय पद्धति पानी के ह्रास परलक्षित होकर मृदा उपयुक्तता के सदुपयोग पर आधारित होगी । देश के विभिन्न प्रकार की मृदाओं पर किए गए कार्यो के आधार पर यह संस्तुत किया गया है कि जलभाग 750 से 2500 मिमी0 तक परिवर्तित होती रहती है । इसमें से कई स्थानों पर 70 प्रतिशत से अधिक जल की क्षति रिसाव के चलते हो जाती है (डेस्टेन, 1971) । जल का रिसाब निम्न क्रम में प्रतिवेदित किया गया है – बलुई मृदा, बलुई दोमटं मृदा, महीन बलुई दोमट, दोमट चिकनी मृदा ।

मृदा की भौतिक दशा में मृदाकर्षण उपचारों जैसे पडविंग और सघनीकरण के चलते उसकी बुल्क डेन्सिटी बढ़ती है और बड़े रंध्रों के छोटे होने से तथा संचालकता के कम होने से जल ह्रास घटता है । मृदा सतह हाइड्रोलिक के पडविंग एवं सघनीकरण के द्वारा परिवर्तन से यह प्रतिवेदित किया गया है कि मृदा के भौतिक रासायनिक गुणों और हाइड्रोलिक संचालकता पर समान प्रभाव पडता है । जो भी पाडविंग की गहराई और उसकी मात्रा और सघनीकरण का फसल के वृद्धि, उत्पादन और जलमांग पर प्रभाव पड़ता है । खरगपुर में अम्लीय वेटरिटिक बलुई–चिकनी–दोमट मृदा पर किए गए अनुसंधान के आधार पर यह अभिप्रमाणित हुआ था कि पडविंग की गहराई को 10 सेमी से बढ़ाकर 15 सेमी करने पर रिसाव द्वारा पानी की क्षति को काफी हद तक कम किया गया ।

तालिका – 2 : पडविंग और सघनीकरण का बुल्कडेन्सिटी और हाइड्रोलिक संचालकता तथा मृदा एवं जल के रिसाव ह्रास पर प्रभाव : (स्रोत – पाण्डे इत्यादि, 1973)

उपचार	मृदा की डेन्सिटी 1 सीसी (जी) ग्राम	मृदा की हाइड्रोलिक संचालकता 10 - 4 सेमी0/सेकिन्ड	रिसाव द्वारा मिमी/दिन
नियंत्रित	1.46	5.7	100 - 120
पडविंग	1.73	0.45	5 - 18
सघनीकरण	1.68	0.48	6 - 22

मृदा जिस पर धान की खेती की जाती है में अत्यधिक विविधता पाई जाती है और इसलिए प्रबन्धन पद्धतियों में भी समान रूप से विविधता पाई जाती है । मृदा की मूल आवश्यकता कार्बनिक पदार्थों की अधिक मात्रा और अच्छी जलधारण क्षमता है । धान की फसल के लिए सघन चिकनी मृदा अधिक उपयुक्त होती है । जबकि बलुई मिट्टी अनुपयुक्त होती है । धान की खेती के लिए सर्वाधिक उपयुक्त मृदा भारी उदासीन मृदाएं (चिकनी, चिकनी दोमट और दोमट मृदा) है । मृदा की हाइड्रोलिक संचालकता (परमीएबिलीटी) धान की खेती के लिए मृदा की हाइड्रोलिक संचालकता वारगम्यता एक मुख्य मापक है । उच्च सिंचाई दक्षता की प्राप्ति रिसाव के मानों पर आधारित मृदा–उपयुक्तता के कुछ दिए गए हैं ।

पुनः धान को मध्यम लवण सहिष्णु के रूप में प्रतिवेदित किया गया है । जबकि धान की कोई ऐसी प्रजाति नही है जो कि अपने सम्पूर्ण वृद्धिकाल तक उच्च लवणीयता को सहन कर सके । मृदा घोल में उच्च सोडियम क्लोराइड का स्तर 6 से 10 मि0म्होज 1 सेमी विद्युत संचालकता के साथ 50 प्रतिशत उपज ह्रास के लिए उत्तरदायी होता है। जबकि सोडियम सल्फेट कुछ मात्रा तक कमोबेस कम नुकसानदायक होता है । धान की इस विशेष विशेषता का उपयोग बहुधा लवणीय एवं क्षारीय को सुधारने में धान के प्रक्षेत्र में वर्षा जल के द्वारा अथवा सिंचाई जल के द्वारा किया जाता है । धान एक मात्र ऐसी फसल है जिसकी खेती जल जमाव की स्थिति में की जाती है । यह धान की एक सामान्य विशेषता है ।

जब धान को लवणीय मृदा में उगाते हैं तो जल भराव के चलते मृदा में उपस्थित लवणों का अलवणीयकरण एवं तनुकरण हो जाता है । धान की विभिन्न वृद्धि अवस्थाओं में पौधावस्था और पुष्पन अवस्थाएं लवणीयता एवं क्षारीयता के लिए अधिक संवेदनशील मानी गयी हैं । उपयफ्क्त सीमतताओं से निजात पाने के लिए लम्बी अवधि के धान की नर्सरी की रोपाई की पद्धति तथा नर्सरी से पुष्पन तक जल भराव को बनाए रखने की दलील दी गई है । धान की लवणसहनीयता धीरे–धीरे उम्र बढ़ने के साथ ही साथ पूर्ण ऊंचाई अवस्था तक बढ़ती जाती है । विभिन्न वृद्धि की अवस्थाओं की सम्बन्धित सहनीयता लवणसीद्रता के स्तर के साथ–साथ तालिका–3 के अनुरूप बदलती रहती है ।

तालिका – 3 : धान की विभिन्न वृद्धि अवस्थाओं की सम्बन्धित लवण सहनीयता (स्रोत–डारगन और एब्राल, 1971)

वृद्धि की अवस्थाएं	सहनीयता सीमा तक (पी0पी0एम0)
सभी समय के लिए सुरक्षित	600
पौधावस्था	1300
कल्लायन	1700
दीर्घ संधि एवं बाली निकलने की अवस्था	3400
पुष्पन	760
परिपक्वता तक	3400

अतः यह स्पष्ट हो जाता है कि लवण सीद्रता के तनुकरण के लिए सीडलिंग और पुष्पन की अवस्था पर खेत में पानी का लगाना आवश्यक है । लवणीय एवं क्षारीय मृदाओं में अक्सर जल निकास उचित नहीं होता है । किन्तु जिप्सम का प्रयोग मृदा की पारगम्यता वृद्धि की दृष्टि से लाभदायक पाया गया है । समस्याग्रस्त मृदाओं में फसल के ऊपर मृदा सुधारकों का प्रभाव तब बढ़ गया जब चरणीय जलप्रबन्धन पद्धति का प्रयोग किया गया ।

जबकि जलभराव की स्थिति में नत्रजन की त्वीचिंग अवश्यम्भावी है । इस क्षति को कम करने के लिए नत्रजन को कई बार में प्रयोग करने का प्रयास किया जा चुका है । अमोनिकलनत्रजन के भारी मृदाओं में तीन बार के प्रयोग तथा हल्की मृदाओं में चार बार के प्रयोग द्वारा नत्रजन का नुकसान काफी हद तक कम हो गया ।

धान की भूमि का जल विज्ञान

धान की खेती के लिए प्रयुक्त मृदा की उत्पादकता काफी सीमा तक मृदा एवं जल की दशा द्वारा निर्धारित होती है । धान की खेती को मृदा एवं जलप्रबन्ध की दृष्टि से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है :

1– उच्च भूमि धान की खेती
2– मध्ययम भूमि धान की खेती
3– निम्न भूमि धान की खेती

उच्च भूमि धान का आशय सीमित अर्थो में बिना मेड़ के प्रक्षेत्र से है जिसमें जुताई करके बीज को सूखी दशा में बोया जाता है जो नमी के लिए वर्षा पर आधारित होता है । सामान्यतया इस वर्ग की मृदाएं प्राकृतिक दशा में स्वतन्त्र जल निकास युक्त होती है जिनकी मृदा प्रोफाइल कभी नहीं अथवा कभी–कभार ही जल संतृप्त होती है ।

मध्यम भूमियों को भारी वर्षा के दरम्यान उच्च भूमियों से कुछ अफवाह जल प्राप्त हो जाता है जो कि घाटी अथवा मैदान की स्थिति में ढाल के पादतल में स्थित होती हैं । इस तरह की भूमियां समतल लैंड स्केप पर पाई जाती हैं जहां पर वर्षा की मात्रा वाष्पीकरण से अधिक हो जाती है । इस वर्ग की मृदाएं प्राकृतिक दशा में अस्थाई जल संतृप्ति जो कि निम्न गहराई के जल जमाव को प्रदर्शित करती हैं । इस प्रकार की मृदाएं धान की खेती के संदर्भ में वैज्ञानिक और सरल जल प्रबन्धन की दृष्टि से अत्युत्तम मानी जाती है ।

निम्न भूमियां अपनी प्राकृतिक दशा में कम से कम वर्ष के उस भाग तक पानी में डूबी रहती है जब धान की खेती की जाती है । यह भूमियां सदैव लैंड स्केप के निचले भाग में पाई जाती हैं । जल निकास (चाहे रिसाव से या अपवाह) बहुत धीमा होता है जिसके चलते धान का क्षेत्र फसल के अधिकांश समय तक पानी में डूबा रहता है । कुछ ऐसी भी भूमिया होती हैं जो बाढ़ एवं जल जमाव के चलते धान की खेती के लिए अधिक जल के चलते हानिकारक होती हैं।

बारानी और बाढ़ वाले क्षेत्र

बारानी धान के क्षेत्र को जल की प्राप्ति वर्ष द्वारा अथवा ऐसे क्षेत्रों द्वारा होती है जहां से वर्षाधिक्य जल मिट्टी की मेढों द्वारा बहकर आता है ।

बाढ़ वाले धान के क्षेत्रों को जल की प्राप्ति नदियों, सहायक नदी–नालों के जलस्तर में वृद्धि के चलते होती है। अत्यधिक बाढ रोपाई के समय पौध के लिए सूखने का तथा कम कल्लायन का कारण बनती है । यह पुष्पन के समय परागण एवं निषेचन और दाने बनते समय उनके विकास को भी बुरी तरह प्रभावित करती है । यह प्रतिवेदित किया गया है कि उपर्युक्त दशा में फसल के उत्पादन को उचित जल निकास द्वारा 25 से 50 प्रतिशत तक बढाया जा सकता है ।

पूर्वी भारत के अधिकांश क्षेत्र में वर्षा काल में धान की खेती के समय अत्यधिक जल होता है और अधिकांश दशाओं में ऊंचाई–निचाई के चलते जलनिकास को नहीं अपनाया जाता है जबकि निम्न क्षेत्रों के लिए सुरक्षात्मक उपायों यथा–बंधी बनाकर नहरों एवं निकास नालों द्वारा जल निकास किया जा सकता है । जिससे कि इस क्षेत्र में धान की खेती सफलतापूर्वक की जा सकती है । कल्लायन अवस्था के बाद यदि पौधों के चौथाई भाग तक पानी लगता है तो फसल को सबसे कम नुकसान होता है ।

भूमि जलभराव प्रभाव

जल भराव की स्थिति में नियंत्रित दशाओं में धान की खेती कई लाभों को प्रदान करने की एक स्वीकृत पद्धति हो चुकी है । धान की सफल खेती के लिए भीगी फसल पद्धति में निम्न भूमियों में अथवा सिंचित दशाओं में प्रचलित यह एक आवश्यक दशा है । जल भराव के चलते निम्न भूमि धान की मृदाएं उच्च भूमि धान की मृदाओं की तुलना में भौतिक, जैविक और रासायनिक गुणों की दृष्टि से भिन्न होती है । जलभराव के चलते मृदा के वातावरण में जो मुख्य बदलाव आता है वह फसल के लिए मृदा में आक्सीजन के अभाव और अवकृत जोन की अवस्थापना होती है जिसके चलते मृदा सतह की प्रोफाइल दो विशिष्ट सतहों –

1– जल और मृदा सतह के सम्पक्र का आक्सीकृत क्षेत्र या वायुवीय सतह ।
2– मृदा सतह के नीचे अवकृत क्षेत्र का अवायवीय क्षेत्र जहां मुक्त आक्सीजन का अभाव होता है ।

जल भराव के चलते अम्लीय मृदाओं में मृदा pH में वृद्धि दर्ज की गयी जबकि कैल्केरियस मृदाओं में मृदा pH में कमी हुई । दूसरे शब्दों में अम्लीय और कैकेरियस दोनों मृदाओं में जल भराव के चलते प्रारम्भिक pH मानों में निरपेक्ष मृदा pH 6.5 से 7.0 के बीच पहुंच गया ।

जल आवश्यकता की कार्यिकीय एवं क्रांतिक अवस्थाएं

धान के पौधे के जीवनकाल को दो भागों – वानस्पतिक वृद्धिकाल एवं विकास वृद्धिकाल में बांटा जा सकता है । किसी प्रजाति की कुल अवधि मुख्यतया उसके वानस्पतिक वृद्धिकाल से नियंत्रित होती है जबकि विभिन्न अवधियों की प्रजातियों में भी उत्पादक अवस्था में बहुत कम अंतर होता है ।

क्रांतिक जल अवस्था के पहचान के दो तरीके हैं । यह या तो जल के लिए संवेदनशील वृद्धि अवस्थाओं द्वारा अथवा वृद्धि अवस्थाओं के समय जल उपभोग द्वारा निर्धारित होती है ।

दूसरे एक बहुधा प्रयोग में लायी जाती है । यह प्रेक्षित किया जा चुका है कि गांठ बनने के समय से लेकर पुष्पन तक का काल बहुत महत्वपूर्ण होता है । एक दूसरी किन्तु कम महत्वपूर्ण वाष्पोत्सर्जन अवस्था अधिक कल्ले फूटने के समय आती है । विभिन्न अवस्थाओं के तुलनात्मक मूल्यांकन से यह स्पष्ट हो गया कि वृद्धिकाल के समय जल कमी के चलते कल्लो की संख्या में कमी आयी जबकि विकास की अवस्था में पानी की कमी के चलते दोनों की संख्या और उनके वजन में कमी आयी ।

प्रभावी जलप्रबंध के दृष्टिकोण से धान के पौधे के सम्पूर्ण जीवनकाल को चार कालों में बांटा जा सकता है । जैसे – पौधावस्था (नर्सरी की अवस्था) वृद्धि की अवस्था, पुनर्उत्पादक चरण और परिपक्वता अवस्था ।

सम्पूर्ण पौधावस्था में कम पानी की आवश्यकता होती है । वृद्धिकाल के तहत रोपाई एवं कल्ले फूटने की अवस्था के बाद की पुनर्वाप्ति एवं जड़ों के विकास की अवस्था आती है । इसके बाद इस अवस्था के प्रारम्भिक भाग में कम पानी ही पर्याप्त होता है जो कि कल्लों के स्थापना में भी सहायक होता है ।

विकास अवस्था का प्रारम्भ अधिकतम कल्ले फूटने की अवस्था के बाद शुरू होती है और इसके अन्तर्गत प्रिमोर्डिया या विकास, दीर्घसंधि अवस्था, बाली निकलने और पुष्पन अवस्थाएं आती हैं । जल की अधिकांश मात्रा की आवश्यकता इसी काल में होती है । इस अवस्था में किसी भी प्रकार की जल की कमी अधिकतर हानिकर होती है ।

परिपक्वता अवधि के तहत दुग्धावस्था, दाना सख्त पड़ने, पीलापन और दानों की पूर्ण परिपक्वता की अवस्थाएं आती हैं । इस अवस्था में पानी की कम अवस्था होती है और दाने के पीलेपन एवं पकने के बाद तो लगभग जल की बिल्कुल आवश्यकता नहीं होती है ।

सिंचित धान-जल आवश्यकता

यदि धान की फसल में कल्ले फूटने के समय से दाने के सख्त बनने के समय तक 5–12 सेमी तक का हल्का जमाव 1 से 3 दिन के अंतराल पर लगातार बनाए रखा जाए तो अधिकतम उपज के साथ ही साथ 15–20 प्रतिशत तक सिंचाई जल में कमी की जा सकती है ।

दक्ष जल प्रबन्धन की प्राथमिक आवश्यकता, सिंचाई और जल निकास के ऊपर पूर्ण नियंत्रण होना है । दक्ष जल प्रबन्धन के तहत निम्न बातों को वृद्धिकाल के समय ध्यान में रखना होता है –

1– फसल विशेष के वृद्धि अवस्था और पौधों की ऊंचाई के अनुरूप जल की गहराई उपयुक्त हो ।

2– विशेष मृदा प्रकार और पर्यावरणीय कारकों के लिए फसल की आवश्यकता का सम्बन्ध प्रयोग की दर के साथ हो ।

जल भराव की अवधि चाहे सम्पूर्ण वृद्धि काल तक हो अथवा वृद्धि की विभिन्न अवस्थाओं पर हो, उसके सन्दर्भ में ज्ञान जल के आर्थिक उपयोग के लिए अपरिहार्य होता है । चरणीय जल भराव मृदा के वातावरण के लिए वर्षा काल (भीगे मौसम) में अनुकूल दशाएं प्रदान करता है और शुल्क मौसम में जल के आर्थिक उपयोग में सहायक होता है । तालिका 4 और 5 के निष्कर्षों से यह स्पष्ट हो जाता है कि लगभग 5 सेमी तक जल का हल्का जल भराव धान की वृद्धि के लिए आवश्यक है । जबकि प्रयोग में इस स्थिति को प्राप्त करना बमुश्किल होता है । उपयुक्त स्थिति में करीब तक पहुंचने का प्रयास निःसन्देह लाभदायक होगा ।

तालिका – 4: लम्बे और बौने इंडिका धान की उपज पर नमी क्षेत्र का प्रभाव : (स्रोत भाटिया और डेरस्टेन, 1966)

जल क्षेत्र	अनाज उत्पादन कु0/हे0 लम्बे	बौने
संतृप्ति से 0.4 वातावरणीय तनाव	46.10	55.80
4 सेमी0 से 0 सेमी0 जलभराव	59.00	71.96
8 सेमी0 से 4 सेमी0 जलभराव	57.00	56.00

तालिका – 5 : भीगे मौसम के धान के अनाज उत्पादन और जलभाग पर विभिन्न जल क्षेत्र का प्रभाव : (स्रोत पाण्डे, 1976)

नमी क्षेत्र	अनाज उत्पादन कु0/हे0	जल प्रयोग मि0मी0
15.0 से0मी0 जलभराव	57.10	1538
संतृप्ति से हेयर क्रेकिंग	54.70	913
संतृप्ति से क्षेत्र क्षमता	53.60	831

बरानी एवं बाढ़ग्रस्त दशाओं की तुलना में नियंत्रित जलपूर्ति धान की अधिक उपज प्राप्त करने हेतु उन्नत प्रजातियों तथा उच्च निवेश तकनीक को अपनाने में सहायक होता है ।

प्रायोगिक निष्कर्षों के आधार पर यह संस्तुत किया जा चुका है कि पौध रोपाई के समय से कल्ले फूटने तक संतृप्त के करीब दशा बनाए रखना इसके बाद कल्ले फूटने के समय से पुष्पन तक 5 ± 2 सेमी तक हल्का जलभराव और पुष्पन से परिपक्वता अवस्था तक या तो हल्का जलभराव का संतृप्ति बनाए रखना चाहिए इससे उच्च स्तर की जल उपयोग दक्षता बिना उपज के प्रभावित हुए प्राप्त होगी ।

निष्कर्ष के रूप में यहां कहा जा सकता है कि धान की जल आवश्यकता मृदा एवं इसके प्रबन्धन, जलवायु एवं मौसम, धान की प्रजातियों जल प्रबन्धन और अन्य उत्पादन पद्धतियों के चलते काफी हद तक बदलती रहती है । धान के लिए सिंचाई और कुल जलमांग के आंकडे 750 मि0मी0 ये अधिकतम 2500 मि0मी0 तक बदलते रहते हैं ।

इस बात पर जोर देने की आवश्यकता नही हैं कि जल भराव वाली धान की मृदा उच्च हाइड्रोलिक संचालकता (हल्की मृदा) होती है, तथा परकोलेशन से जल का नुकसान अधिक होता है जिसके चलते इनकी जल मांग अधिक होती है । जबकि उपयुक्त मृदा योजना पद्धति परकोलेशन द्वारा जल ह्रास को कम करने में सहायक होती है ।

तालिका – 6 : निम्न एवं उच्च वाष्पीकरण मांग के समय जल–क्षेत्र का धान की उपज पर प्रभाव :

उपचार	मानसून		गर्मी	
	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष	प्रथम वर्ष	द्वितीय वर्ष
संतृप्ति के करीब	43.8	39.3	33.0	34.0
हल्का जलभराव	40.0	43.2	52.2	51.5
गहरा जलभराव 10 ± 2 सेमी	38.6	45.0	50.0	50.0
सार्थकता स्तर 5% पर	असार्थक		सार्थक 8.5	

जलवायु और मौसम

ऐसा विश्वास किया जाता है कि धान के क्षेत्र में वाष्पीकरण, वाष्पोत्सर्जन के साथ ही साथ उपाय जल उपयोग और परकोलेशन सकल जलमांग को परिवर्तित कर देते हैं । तीन (धान उगाने वाले क्षेत्र के लिए) उपर्युक्त घटकों के

वर्ष भर की गणना वातावरणीय धटकों में परिवर्तन जो कि मौसम के साथ बदलते हैं, चित्र (1 और 2) के द्वारा प्रस्तुत किया जा रहा है ।

प्रयोगों की एक श्रृंखला से यह स्पष्ट होता है कि (तालिक–6) मानसून मौसम में धान की फसल का प्रदर्शन कुल मिलाकर संतृप्त, हल्के एवं गहरे जलभराव के समय समान रहा जो कि वाष्पीकरण की मांग एवं कभी–कभार मृदा के जल द्वारा भीगने के कारण हो सकता है । जबकि गर्मी के मौसम में उच्च वाष्पीकरण मांग के चलते फसल का उत्पादन जल संतृप्ति में ळलके एवं गहरे जल भराव की तुलना में प्रभावी रूप से कम रहा ।

संदर्भ

पाण्डे, एच0के0 तथा बी0एन0 मित्रा (1971) सिम्पोजिम, वाटर मैनेजमैंट, हिसार – इन्ड़िया ।

पाण्डे, एच0 के0 तथा बी0एन0 मित्रा (1971) एक्सपेटिमेण्टल एग्रीकल्चर, 7, 241.

पाण्डे, एच.के., के0वी0पी0राव, बी0एन0 मित्रा (1973) सिम्पोजिम वाटर मैनेजमैण्ट प्रैक्टिसेस ।

यादव, जे0 एस0 पी0 (1973) एनुअल रिपोर्ट आल इन्डिया कोआडिमैटेंड स्कीम रिसर्च वाटर मैनेजमेंट तथा स्वायल सैलिनीटी

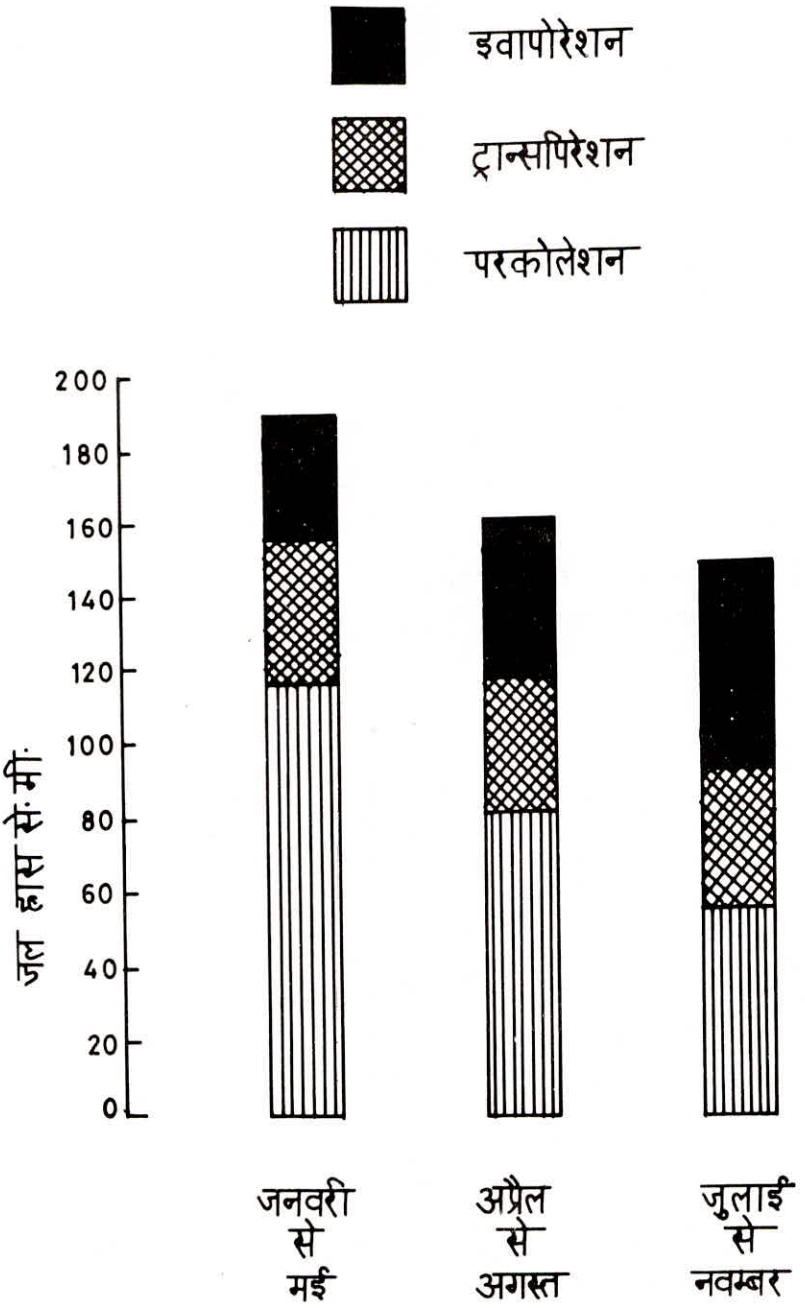

चित्र 1: तीन मौसमों में निचली भूमि धान के खेत से जल ह्रास
(स्रोत यादव 1973)

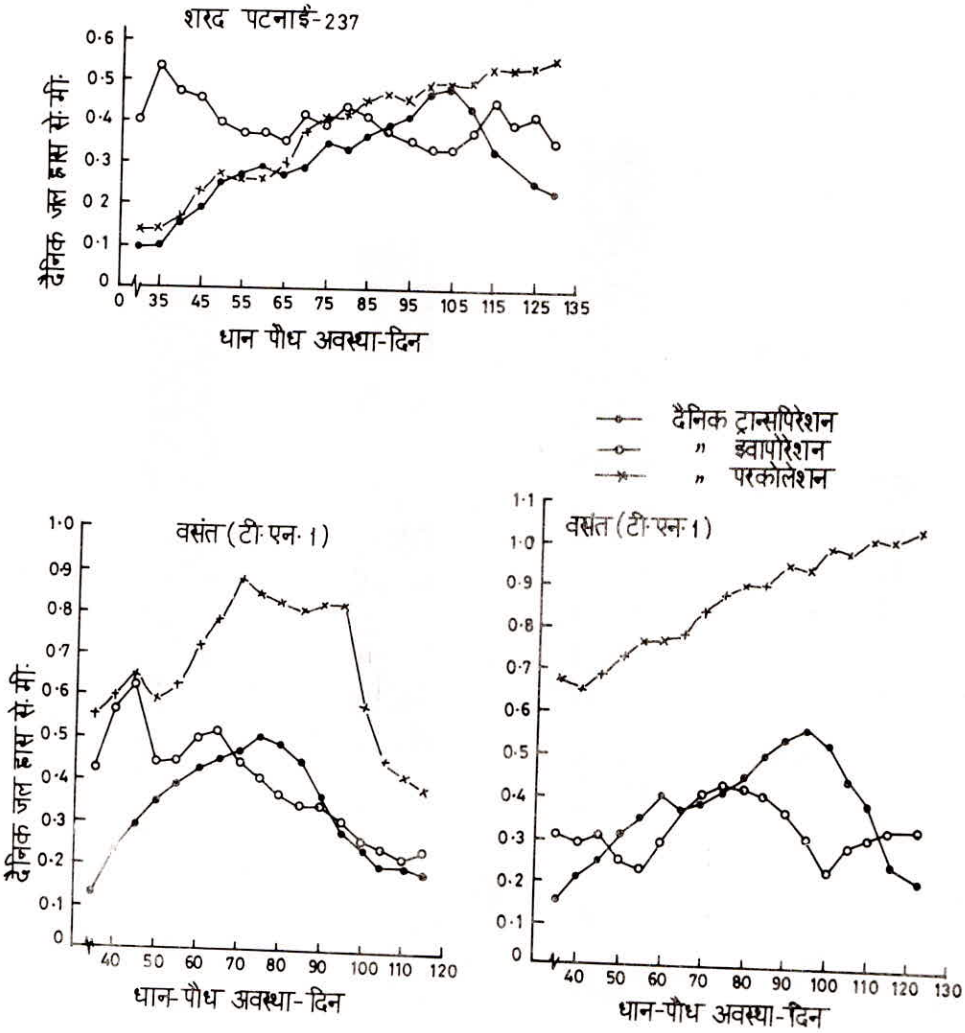

(श्रोत पाण्डे और मिला 1971)

चित्र 2: तीन मौसम शरद वसंत और गर्मी वाले धानों के खेत से दैनिक जल ह्रास, कारक - ट्रान्सपिरेशन, इवापोरेशन तथा परकोलेशन